शांति के लिए संकल्प ही काफी नहीं

पूरी दुनिया के लोग खुशी और समर्थता के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। सरकार के स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर किये जा रहे प्रयत्नों के लक्ष्य यही हैं, यही हैं समर्थता, भूख और भय से मुक्ति के लिए । आनंद और खुशी भूख के बाद की चाह है। आदिम मनुष्य से लेकर अब तक यही हो रहा है। इसी लक्ष्य के लिए दो विश्व युध्द भी हुए और लगभग सभी देशों में आंतरिक युध्द, उपद्रव, मारकाट आदि जाने कितनी घटनाएं हुई हैं। कबीलों से लेकर राजाओं के राज और उसके बाद प्रजाओं के राज भी इसी के लिए होते रहे हैं। अचरज भी होता है कि खुशी और शांति के इन प्रयत्नों में रक्तपात भी होता रहा है। राज्य के साथ धर्म का भी यही प्रयत्न रहा है। यह इसलिए कि अशांत, अस्थिर और भयग्रस्त कोई नहीं रहना चाहता है। इस सबके लिए बल का प्रयोग, श्रेष्ठता-कनिष्ठता या सबल-निर्बल आदि ऐसे कई सिध्दांत और उपायों का सहारा भी लिया जाता रहा है। पर अब तक रेगिस्तान की हरितिमा की तरह यह मृग-मरीचिका ही साबित हुए हैं।

संभवत: यही वजह है कि सदी के अंतिम वर्ष में विश्व के तमाम देशों ने अब तक के प्रयत्नों को युध्द के प्रयत्न मानकर उन प्रयत्नों को त्यागकर नया मार्ग अपनाने का निर्णय लिया और इक्कीसवीं सदी को शांति की संस्कृति कहते हुए पुराने सभी प्रयत्नों को छोड़कर नया मार्ग अपनाने का संकल्प संयुक्त राष्ट्र में किया। इन संकल्पों में यह स्वीकार किया गया कि अब तक किये जा रहे प्रयत्न और इस बारे व्यक्त किये गये विचार कहीं न कहीं या किसी न किसी रूप में संघर्ष या युध्द से जुड़े रहे हैं। इसी से सबल-निर्बल, गरीब-अमीर, समर्थ-असमर्थ, विकसित और अविकसित देश तथा लोग होते रहे हैं। उनमें इसी के लिए संघर्ष भी, होते जिन्हें एक हद तक अनिवार्य भी माना गया और उसकी वैधता स्वीकार की गई। नई सदी के संकल्प में यह माना गया कि अब प्रयत्न सहयोग और भाईचारे के हों।

सबको बराबर माना जाये। स्त्री और पुरूष में सामर्थ्य और योग्यता में अंतर न समझा जाये। मानव की गरिमा और उसका सम्मान हो। इस सबके लिए शिक्षा, सरकार, संगठन और सभ्य समाज समवेत प्रयत्न करे। इस सदी के पहले दस वर्ष इसी लक्ष्य को पाने के लिए समर्पित हों।

सन 2000 से प्रारंभ हुए इसके लक्ष्य को नाम दिया गया-शांति की संस्कृति के लिए प्रयत्न। शांति का अर्थ युध्द न होने तक सीमित नहीं माना गया। माना गया कि शांति का मतलब लोंगों की खुशी, समर्थता, अभय और गुणा त्मक विकास है। यह भी माना गया कि इसके लिए प्रयत्न मिलजुलकर, सहयोग और भाईचारे की एकजुटता के साथ किये जायेंगे। उम्मीद की गई कि जल्दी ही इस लक्ष्य को पा लेंगे। पांच साल बाद यानी 2005 में इस अभियान का प्रगति प्रतिवेदन दुनिया के सामने रखा गया। इस प्रतिवेदन में कहा गया कि उम्मीद के अनुसार न तो देशों की सरकार, संगठन या सभ्य समाज से सहयोग मिला है और न ही लोग इस बारे में एकजुट होकर साथ आये हैं। शिक्षा या संगठन के क्षेत्र में बदलाव बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। सरकारों ने लक्ष्य तो स्वीकार कर लिया पर उनका रवैया पुराना ही है। सभ्य समाज या सिविल सोसायटी भी इस बारे में ज्यादा कुछ नहीं कर पाई है। आंतक, अपराध, हिंसा और व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार में कोई कमी नहीं आई है। मिस्र, टयूनीशिया, लीबिया, लेबनान या पाकिस्तान ही नहीं अमरीका, इग्लैंड या भारत जैसे देशों की घटनायें इसका उदाहरण हैं। इसका अर्थ क्या है?

शांति की संस्कृति की पहल के लिये मीडिया को एक मुख्य कारक माना गया था और उसके साथ ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को उसका आधार। पर पांच वर्ष बाद जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई उसमें कहा गया कि न तो विचारों के मुक्त प्रवाह को विकसित किया गया और न ही आसान और समाज सरोकारी जानकारी लोगों को आसानी से उपलब्ध कराने का वातावरण बन पाया। अर्थात न तो प्रेस या मीडिया जैसे माध्यम बंदिशों से मुक्त

रहे और अभिव्यक्ति की आजादी भी नहीं मिली जो शांति की संस्कृति की आधारभूत जरूरत है। पत्रकारों पर उत्तर अफ्रीका और मध्य एशिया के देशों में हमले हुए और उन्हें कवरेज से रोका गया। मानवाधिकार तथा गरीबी और भूख से आजादी या इस बारे में लोगों के सामर्थ्य बढ़ाने में भी सरकारें कमजोर ही ठहरी हैं। एक पक्ष तो यह है। पर इसका एक पक्ष और है। भारत सहित कई देशों में प्रेस की भूमिका भी बाजार और उपभोक्तावाद को बढ़ाने में और उत्तेजना या संघर्ष को हवा होने की रही है। इसका संकेत इस रिपोर्ट में यह कहते हुए किया गया है कि आज भी बुरी खबर ज्यादा बड़ी है। अच्छी खबर तो खबर ही नहीं है। (बेड न्यूज इज बिग न्यूज एण्ड गुड न्यूज इज नो न्यूज) विकसित और विकासशील देशों के समाचार पत्र और न्यूज चैनल राजनीति, हिंसा, संघर्ष, भष्ट्राचार और व्यभिचार के समाचारों से भरे रहे हैं। उनमें विकास या मानवीय मूल्यों या मानवीय प्रतिष्ठा और बच्चों के सुखद भविष्य को लेकर समाचार नहीं हैं या अत्यंत कम हैं। शांति, खुशी आदि की चाहना और उसके लिये किए जा रहे प्रयत्नों में ढीलापन होना, इसके अंतराल को समझना होगा।

दरअसल, मीडिया और विशेषकर नये मीडिया ने लोगों को विचार सूचनाओं से जोड़ने तथा उत्प्रेरित करने का काम तो किया है पर उसी ने उपभोक्तावाद तथा भोगवाद के बढ़ने में मदद की है। मध्यवर्ग की हैसियता से जो बाजार मजबूत होता जा रहा है, और जिस तरह से विकासशील देशों में जीवन स्तर को मंहगाई प्रभावित कर रही है, उसमें भी मीडिया का सहयोग है। ऐसे ही विचारों के स्वतंत्र प्रवाह को सामंती तथा एकाधिकार शक्तियां अपने निहित स्वार्थ के चलते कब रोक दें, कोई नहीं कह सकता। इस सबके पीछे जो मानसिकता काम करती है वह वही मानसिकता है, युध्द, संघर्ष, गैर-बराबरी या ऊंच-नीच या सबल-निर्बल की है। उस मानसिकता को बदले बिना शांति कि संस्कृति या वह आचरण-व्यवहार, सोच और समझ पैदा नहीं होगी, जिससे समता या सहयोग का वातावरण बन सके। इसके लिए लगभग सभी संस्थान और निकायों को समवेत प्रयत्न करना होगा। जिस युग में हम

आज हैं, उसमें तो अब यह भी जरूरी है कि देशों को भी मिलजुलकर ही ऐसे प्रयत्न करने होंगे। शांति की संस्कृति आदर्श है, आकांक्षा भी है और युध्द तथा उपद्रव से पीड़ित मानवता का वह लक्ष्य भी है। इसके लिए प्रयत्न भी हो रहे हैं। पर परिणाम नहीं आ रहे हैं। हद तो यह है कि शांति के लिए युद्ध भी लड़े जा रहे हैं। अब युद्ध, नफरत और दबाव से शांति कैसे होगी ? शांति तो होगी प्रेम और सद्भाव से जिस का उत्स या केन्द्र उस भाव में है जो अपनी निजता को छोड़कर समष्टि के साथ एकाकार होता है। इसके लिए तो लोगों को, देश और सरकारों को अब तक की पूरी विचार और उपाय प्रणाली को खारिज करने के लिए तैयार होना होगा। उन्हें यह मानना और स्वीकार करना होगा कि पूरा विश्व एक परिवार है और पूरी वसुधा एक कुटुम्ब है। अपने भाई या परिवार के साथ शांति के लिए जिन उपाय और व्यवहार को हम अपने निजी जीवन में अपनाते हैं, वही हमारा सार्वजनिक उपाय और व्यवहार होगा। इसके लिए हमें अपनी चेतना के केन्द्र को बदलना होगा।

० ० ०